International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 1, January 2018
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

ब्रिटिश काल में भारत का स्थानीय शासन

डॉ. गुरदेव सिंह
एसोसिऐट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान
गाँधी आदर्श कॉलेज समालखा

प्रस्तावना

ब्रिटिशकालीन पंचायती राज शासन के विषय में अच्छा विवरण प्राप्त होता है। ब्रिटिश काल में ग्राम शासन की शुरूआत 1687 से मानी जा सकती है । यद्यपि भारत में स्थानीय शासन प्राचीन काल में विद्यमान था, किन्तु संगठन तथा कार्यप्रणाली के रूप में उसका प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ था । न तो प्राचीन युग में प्रचलित ग्रामीण स्वशासन की व्यवस्था में और न उस समय की नगरीय शासन प्रणाली में ही ऐसा शासन देखने को मिलता था जिसका समय–समय पर निर्वाचन होता था, और जो निर्वाचकगण के प्रति उत्तरदायी हो । ऐसी व्यवस्था का विकास तो पश्चिम में हुआ था और ब्रिटिश सरकार ने भारत में उसका सूत्रपात किया था ।[1] स्थानीय शासन की इकाईयों को निर्वाचित स्वरूप देना उसे धरारोपण की विस्तृत शक्तियां देना और प्रजातंत्र की पाठशाला के रूप में विकसित करने का कार्य ब्रिटिशकाल में ही हुआ है । इस काल में विकसित स्थानीय शासन व्यवस्था पर कुछ पश्चिमी प्रभाव भी पड़ा है । ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की कुछ इकाईयों की अपेक्षा इस काल में नगरीय स्थानीय प्रशासन की संस्थाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था ।[2]

स्थानीय स्वशासन का अर्थ एक ऐसा प्रतिनिधि संगठन है जो एक निर्वाचक मण्डल के प्रति उत्तरदायी हो, प्रशासन तथा करारोपण की विस्तृत शक्तियों का उपयोग करता हो, और

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

उतरदायित्व की शिक्षा देने वाली पाठशाला तथा किसी देश के शासन का निर्माण करने वाले अवयवों की श्रृंखला की महत्वपूर्ण कडी इन दोनों रूपों में कार्य करता हो । इस कार्य में भारत में स्थानीय शासन की रचना ब्रिटिश शासकों ने की थी । प्राचीन ग्रामीण समाजों का निर्माण वंशानुगत विशेषाधिकार अथवा जाति के आधार पर होता था, उनका कार्यक्षेत्र अत्यधिक सीमित था, राजस्व वसूल करना तथा जीवन और सम्पति की रक्षा करना उनके मुख्य काम थे, वे न तो राजनीतिक शिक्षा का सजग साधन थे और न ही प्रशासनिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग थे ।[3] सन 1687 में ग्रामीण व स्थानीय शासन का इतिहास रंग बिरंगा तथा विजातीय आत्मा से प्रभावित रहा है । ब्रिटिश काल व इसके पश्चात विकसित स्थानीय शासन के ढांचे की मोटे तौर पर हम 6 युगों में विभक्त कर सकते हैं लेकिन यथार्थतता यह है कि यह शहरी और ग्रामीण शासन एवं राजनीति का संक्षिप्त समन्वित प्रस्तुतीकरण है –

प्रथम काल (1687 से लेकर 1881 तक)

स्थानीय शासन को केन्द्र तथा प्रान्तों के वित्तीय बोझ को हल्का करने का साधन माना जाता था और इसी रूप में उसका प्रयोग किया जाता था । इसी तरह का साम्राज्यीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

द्वितीय काल (1882 से 1919 तक)

इस काल में स्थानीय शासन को स्वायत शासन की संस्थाओं के रूप में विकसित करने का प्रयास किया गया ।

तृतीय काल (1919 से 1935 तक)

स्थानीय शासन को प्रान्तों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत चलाया गया और फिर उस पर जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण स्थापित हो गया ।

चतुर्थ काल (1935 से भारत की स्वतंत्रता तक)

इसे स्थानीय स्वायत शासन की संस्थाओं के सुधार और प्रशासकीय कार्य क्षमता बढ़ाने का काल माना जाता है ।

प्रथम काल : 1687 से 1881

ब्रिटिश भारत की इस प्रथम अवधि में 1687 में अंग्रेजों के द्वारा मद्रास में एक नगर निगम की स्थापना की गयी । जिसे स्वायत शासन का श्रीगणेश माना जाता है इस काल में बम्बई और कलकता में नगरपालिका की स्थापना की गई । 1773वें रेगुलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों में जस्टिस ऑफ पीस की नियुक्तियां की गई, जिन्हें नगर की साफ सफाई व स्वास्थ्य की देखभाल की जिम्मेदारी दी गयी थी । 1793 के चार्टर एक्ट के माध्यम से इन प्रेसीडेन्सी शहरों में नगरीय प्रशासन स्थापित करने की गवर्नर जनरल को दी गई थी ।[4]

1793 अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) के द्वारा मद्रास बम्बई तथा कलकता के तीन महाप्रान्तीय नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना की गई । उस अधिनियम के अनुसार भार के महाराज्यपाल (गर्वरन जनरल) को उक्त तीन नगरों में शान्ति दण्डाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया । इन दण्डाधिकारियों को सफाई, पुलिस व्यवस्थ तथा सड़कों के रख–रखाव के लिए भवनों तथा भूमि पर कर लगाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया ।[5] सन् 1840 और 1850 के मध्य प्रसीडेन्सी शहरों में नगरीय स्थानीय प्रशासन संगठन और कार्यों का विस्तार ही नहीं किया गया अपितु कुछ सीमा तक निर्वाचन का सिद्धान्त इन संस्थाओं के लिए अपनाया गया। यद्यपि यह प्रारम्भिक प्रयोग सफल नहीं रहा इस कारण सन 1856 के अधिनियम द्वारा नगरीय संस्थाओं के संगठन को प्रतिबंधित किया गया और समस्त शक्तियां कमिश्नर में निहित कर दी गई । कालान्तर में 1867 में मद्रास नगर निगम में 32 सदस्यों की व्यवस्था की गई जो मनोनीत किए जाते थे । निगम की कार्यप्रणाली की शक्ति अध्यक्ष में निहित की गई जिसे सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता था । बम्बई नगर निगम में भी सन 1865 के अधिनियम के अनुसार सम्पूर्ण कार्यकारिणी की शक्तियां एवं मनोनीत कमिश्नर के हाथ में केन्द्रित कर दी गई थी । इस कमिश्नर के अतिरिक्त अधिनियम में शांति हेतु न्यायमूर्ति की व्यवस्था भी की गई थी। 1872 में बम्बई के लिए एक नया अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत निर्वाचित अध्यक्ष की व्यवस्था की गई, आधे निर्वाचित सदस्यों का प्रावधान किया गया तथा निगम को प्रशासन सम्बन्धी

नीति निर्धारण करने, बजट पास करने और प्रशासन पर नियंत्रण रखने तथा आलोचना करने का अधिकार भी दिया गया।

प्रेसीडेन्सी शहरों के अतिरिक्त अन्य शहरों में नगरीय प्रशासन का प्रारम्भ पहरेदारी की व्यवस्था से हुआ है । सन 1814 में समस्त बड़े नगरों में वार्ड समितियों का गठन किया गया जिसमें समस्त मकान मालिकों को सदस्य बनाया जाता था । इन समितियों को यह उतरदायित्व दिया गया था कि वे चौंकीदार के वेतन के लिए कर एकत्रित धन राशि में से कुछ धन बच जाए तो उसे नगर के विकास पर खर्च कियाजा सकता है ।[6] बंगाल पीपुल एक्ट 1842 के माध्यम से कई नगरों में नगरीय प्रशासन की स्थापना की गई। 1870 में स्थानीय स्वायत शासन के विकास में एक महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इस वर्ष लार्ड मेयो के विकेन्द्रीकरण कें प्रस्ताव में यह बल दिया गया कि भारतीयों को प्रशासनिक कार्यों में अधिकतम सहभागिता देने की दृष्टि से नगरीय स्थानीय प्रशासन की इकाईयों का विकास किया जाए । प्रोफेसर श्रीराम माहेश्वरी ने इस काल में स्थानीय शासन की विशेषताएं इस प्रकार गिनाई हैं –

1. भारत में स्थानीय प्रशासन प्रथमत ब्रितानी स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए स्थापित किया गया था, न कि देश में स्वशासी संस्थाओं का विकास करने के लिए। करारोपण जांच आयोग (1953–54) ने ठीक ही कहा था, ''भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता ही वह चीज थी (क्योंकि इससे करो को अधिक सरलता से लगाया गया और वसूल किया जा सकता था) जिसने प्रारम्भिक ब्रिटिश शासन को इस देश में स्थायी स्वशासन की संस्थाओं की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया । लार्ड मेयो के प्रस्ताव (1870) में भी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को विकसित करने की कल्पना की गयी थी, किन्तु यह उद्देश्य गौण था, मूल उद्देश्य राजस्व के स्थानीय स्त्रोतों का दोहन करना और विकेन्द्रीकरण के द्वारा प्रशासन में मितव्ययता लाना था।[8]
2. स्थानीय शासन की संस्थाओं पर अंग्रेजों का आधिपत्य था, अतः बहुसंख्य भारतीय जनता उनके कार्य कलाप में भाग लेने के अवसर से वंचित रह गई।

3. भारत में स्थानीय शासन की संस्थाओं के पीछे मुख्य उद्देश्य साम्राज्यीय वित के बोझ को हल्का करना था ।

4. स्थानीय संस्थाओं की सदस्यता को आधार रूप में निर्वाचन की प्रणाली के (पुराने) मध्यप्रदेश के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं लागू नहीं किया गया था । यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि 1881 में पाँच में से चार नगर पालिकाएँ पूर्णतः नामित संस्थाएँ थीं ।

द्वितीय काल (1882 से 1919 तक)

उस समय तक स्थानीय शासन पूर्णतः अभारतीय बना रहा, इसलिए भारतीय दृष्टिकोण से वह बहुत अंशों में न तो 'स्थानीय' था और न 'स्वशासी' । इस बीच भारतीयों में राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ, जिसने नवीन आकांक्षाओं को जन्म दिया । लार्ड मेयो के बाद लार्ड रिपन भारत का गवर्नर नियुक्त हुआ । उसने मुख्यतः अपनी जन्मजात उदारता के कारण अंशतः लोकमत को संतुष्ट करने के उद्देश्य से 1882 में स्थानीय शासन को स्वशासी बनाने का प्रस्ताव किया । उसे स्थानीय शासन के नवीन दर्शन का प्रतिपादन करने का श्रेय दिया जाता है और वह उचित ही है । उसकी दृष्टि में स्थानीय शासन प्रधानतः राजनीतिक तथा सार्वजनिक शिक्षा का एक साधन था जिस प्रस्ताव में इन सिद्धान्तों का समावेश किया गया था उसका एक महान अधिकार पत्र के रूप में जय–जयकार किया गया है, और उसके प्रणेता के लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक कहा गया है ।

लार्ड रिपन का यह विचार था कि शिक्षा के प्रसार तथा प्रशासन में भाग लेने हेतु शिक्षित भारतीयों की इच्छा को देखते हुए यह अपरिहार्य है कि उन्हें प्रशासन में भाग लेने का समुचित अवसर मिले । इस उद्देश्य से प्रेरित इस प्रस्ताव की निम्नांकित विशेषताओं के संदर्भ में समझा जा सकता है–

1. प्रान्तीय सरकारें स्थानीय शासन की संस्थाओं के लिए समुचित धनराशि का प्रबन्ध करे ।

2. प्रान्तों में स्थानीय स्वायत शासन का विकास किया जाए जिससे जनता में जागरूकता और राजनीतिक शिक्षा मिले । स्वायत शासन के विकास के लिए आवश्यक कदम उठाए जाए और वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नए कानून बनाए जाए ।
3. ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों की संस्थाओं में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा जाए ।
4. इन संस्थाओं के लिए अधिक धनराशि व आर्थिक स्वायतता दी जाए, जिससे न केवल उन्हें अपना बजट बनाने का अधिकार हो अपितु कर लगाने के कुछ अधिकार भी दिए जाए ।
5. प्रान्तीय सरकारें स्थानीय संस्थाओं पर प्रजातांत्रिक तरीके से नियंत्रण रखे और यह नियंत्रण सकारात्मक व सुधारात्मक होना चाहिए ।
6. लार्ड रिपन का यह भी विचार था कि स्थानीय संस्थाओं को दायित्व दे दिए जाने से जिला प्रशासन तथा सरकारी विभागों का कार्यभार कम हो जायेगा साथ ही भारतीय समाज के पढ़े–लिखे प्रबुद्ध वर्ग के लोगों को प्रशासन में भाग लेने का अवसर भी सुलभ हो सकेगा और
7. जहां तक संभव हो नगरपालिका का अध्यक्ष गैर सरकारी लोगों से ही चुना जाए, जिलाधीशों को इसका अध्यक्ष न बनाया जाए ।9

इस काल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना 1909 में स्थानीय शासन के इतिहास में एक अन्य महत्वपूर्ण अवस्था (मंजिल) में प्रवेश किया, उस वर्ष राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग[10] की जिसकी स्थापना 1907 में हुई थी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसकी मुख्य संस्तुतियाँ निम्न प्रकार थी –

1. गांव को स्थानीय स्वशासन की बुनियादी इकाई माना जाये और प्रत्येक गांव में पंचायत हो । नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं का निर्माण किया जावे ।
2. स्थानीय निकायों में निर्वाचित सदस्यों का पर्याप्त बहुतम होना चाहिए ।
3. नगर पालिका अपना अध्यक्ष चुने, किन्तु जिलाधीश को स्थानीय जिला परिषद् का अध्यक्ष बने रहना चाहिए ।
4. नगरपालिकाओं को आवश्यक सत्ता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे वे कर निर्धारित कर सकें और कुछ न्यूनतम धनराशि को संरक्षित कोश में जमा करके अपना बजट बना सके ।

5. बड़े नगरों को एक पूर्णकलिक नामित अधिकारी की सेवाएँ उपलब्ध कराई जाये । स्थानीय निकायों को अपने कर्मचारियों पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए केवल नौकरी की सुरक्षा की दृष्टि से कुछ पूर्वोपाय किये जा सकते हैं ।
6. स्थानीय निकायों पर बाहरी नियंत्रण परामर्श, सुझाव और लेखा परीक्षण तक सीमित होना चाहिए ।
7. नगरपालिकाओं की ऋण लेने की शक्ति पर सरकार का नियंत्रण बना रहना चाहिए और नगरपालिका की सम्पति को पट्टे पर देने अथवा बेचने के लिए सरकार की पूर्व अनुमति ली जानी चाहिए ।
8. प्राथमिक शिक्षा का उतरदायित्व नगरपालिका पर होना चाहिए और यदि वह चाहे तथा यदि उसके पास साधन हो, तो उसे कुछ धन माध्यमिक विद्यालयों पर भी खर्च करना चाहिए ।

किन्तु 1918 तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । उस वर्ष भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया था ''स्थानीय स्वशासन का उद्देश्य लोगों को अपने स्थानीय मामलों का प्रबन्ध करने की शिक्षा देना है, और इस प्रकार की राजनीतिक शिक्षा को विभागीय कार्यकुशलता की तुलना में प्राथमिकता दी जानी चाहिए । इसका अर्थ है कि स्थानीय निकायों को उस जनता का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व करना चाहिए जिसके मामलों का प्रबन्ध करने का भार उनके ऊपर है । जो मामले उनके सुपुर्द किये जायें उनमें उनकी सत्ता नाममात्र की न होकर वास्तविक होनी चाहिए, उनके ऊपर कार्य का नियंत्रण न लगाया जाये, उन्हें गल्तियाँ करके और उनसे लाभ उठाकर सीखने का अवसर दिया जाये ।'' प्रस्ताव में निम्नलिखित सुझाव सम्मिलित थे

1. गाँवों में पंचायतों को पुनजीर्वित किया जाये ।
2. स्थानीय निकायों में निर्वाचित सदस्यों का पूर्ण बहुमत हो ।
3. स्थानीय शासन को मताधिकार का विस्तार करके व्यापक आधार प्रदान किया जाए ।
4. स्थानीय निकाय का सदस्य नामित न होकर जनता द्वारा चुना हुआ व्यक्ति होना चाहिए ।
5. स्थानीय निकाय को बजट बनाने, कर लगाने तथा कार्यों को स्वीकृत करने की स्वतंत्रता हो ।

तृतीय काल (1919–1935)

इस काल में स्थानीय स्वायत शासन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया था कि भारत सरकार अधिनियम 1919 के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत शासन का विभाग, प्रान्तीय सरकारों के निर्वाचित मंत्रियों को हस्तांतरित विभागों में सम्मिलित कर लिया गया । इसका प्रशासन अब निर्वाचित मंत्रियों के अधीन आ जाने से उतरदायी बना दिया गया । इस परिवर्तन ने स्थानीय स्वायत शासन के क्षेत्र में नवीन हौंसला उत्पन्न कर दिया था। उक्त अधिनियम के लागू होने से स्थानीय स्वशासन का विषय भारत सरकार के नियंत्रण से मुक्त होकर पूर्ण रूप से प्रान्तीय सरकारों के अधिकार सीमा में आ गया । इस स्थिति का एक परिणाम यह हुआ कि स्थानीय स्वायत शासन के क्षेत्रों में जो एकरूपता अब तक पाई जाती थी वह अब न रह सकी । प्रत्येक प्रान्त इस नवीन स्थिति में पंचायतों, जिला बोर्डो अथवा नगर पालिकाओं के लिए पृथक अधिनियम बनाने का स्वतंत्र था । इस काल में विभिन्न प्रान्तों द्वारा जो अधिनियम बनाए गए उनमें मुख्य निम्न व्यवस्था की गई थी ।

1. स्थानीय संस्थाओं का गठन प्राय पूर्ण रूप से निर्वाचन के आधार पर किया गया । इन निर्वाचनों के लिए निर्वाचक मण्डल का विस्तार भी किया गया ।
2. स्थानीय स्वायत शासन की संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर सरकारी सदस्यों को प्रतिष्ठित करने की व्यवस्था की गई ।
3. स्थानीय संस्थाओं को अधिक प्रशासकीय शक्तियां देने का वातावरण तैयार हुआ ।
4. स्थानीय स्वायत शासन की, ग्रामीण और नगरीय दोनों प्रकार की संस्थाओं को बजट निर्माण के क्षेत्र में पहले से अधिक शक्तियां दी गई ।

किन्तु इस स्थिति के पश्चात भी विभिन्न कारणोंवश स्थानीय स्वायत शासन के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई । स्वायत शासन का विषय यद्यपि लोकप्रिय मंत्री को दिया गया । किन्तु इन संस्थाओं को पर्याप्त धन सुलभ नहीं हो सका, क्योंकि द्वैध शासन के अन्तर्गत वित्त पर उन मंत्रियों का कोई अधिकार नहीं था । समय की गति के साथ ही साथ स्थानीय स्वशासन के दायित्वों में तो वृद्धि हो गई किन्तु इन बढ़े हुए दायित्वों के निष्पादन के लिए वांछित आय के

साधनों में वृद्धि न हो सकी। राजनीतिक दखलन्दाजी भी इन संस्थाओं के विकास में बाधा बना । इस काल में इन संस्थाओं के लोकतंत्रीकरण से उनकी प्रशासकीय कार्यकुशलता के स्तर में एक और जहां कमी आई वहीं दलगत भावनाओं के कारण इन संस्थाओं की सामान्य छवि भी अच्छी नहीं बन सकी । स्थानीय संस्थाएँ कर लगाने में असफल रही और यहाँ तक कि स्थानीय राजनीति के प्रभाव से साम्प्रदायिक शक्तियाँ भी अवांछित रूप से सक्रिय हो गई । इस काल में प्रशासन में भ्रष्टाचार व पक्षपात बढ़ गया । द्वैध शासन के कारण जिलाधीश और उसके कर्मचारियों का जो सहयोग इन संस्थाओं को पूर्व में मिलता था, अब बन्द हो गया, जिलाधीश के नियंत्रण शिथिल हो जाने के कारण इन संस्थाओं की कार्यकुशलता का स्तर एकदम गिर गया । इस प्रकार प्रान्तीय सरकार का एक हस्तांतरित विषय बन जाने के पश्चात भी स्थानीय संस्थाएँ कार्यकुशल और सक्षम प्रशासकीय छवि बनाने में सफल न हो सकी ।[12]

चतुर्थ काल (1935 से भारत की स्वतंत्रता तक)

1935 के भारतीय शासन अधिनियम का प्रान्तीय भाग 1937 लागू किया गया और प्रान्तों में द्वैध शासन स्थापित किया गया । राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति में वृद्धि और प्रान्तीय स्वायत शासन की प्राप्ति के साथ–साथ भारत में स्थानीय शासन का रूप भी बदल गया । इस दिशा में अनुसंधान किया गया कि स्थानीय स्वशासन की संस्थाएँ अकुशल क्यों हैं? मताधिकार की आयु और सीमा को कम किया गया और इन संस्थाओं में सरकारी मनोनीत सदस्यों की संख्या को भी कम किया गया । मध्यप्रदेश बम्बई तथा उत्तरप्रदेश में नगरपालिकाओं की समस्याओं पर विचार करने तथा उसमें सुधार के लिए सुझाव देने हेतु समितियां नियुक्त की गई । इस काल में मद्रास में 1930 और 1933 में दो महत्वपूर्ण अधिनियम बनाए गए । जिला बोर्डों के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया तथा जिलाधीश को जिला बोर्ड का प्रमुख कार्यधिकारी नियुक्त किया गया । 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्थानीय स्वायत शासन के उत्साह में एक नये अध्याय का शुभारम्भ हुआ।

विदेशी शासन की अधीनता में काम करने वाली संस्थाएं अब स्वाधीन राष्ट्र की संस्थाएं बन गई । 1948 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री की पहल पर राज्यों के स्वायत शासन मंत्रियों का सम्मेलन

आयोजित किया गया । इसमें स्वास्थ्य मंत्री अमृत कौर ने कहा कि मेरा विश्वास है कि इस प्रकार का सम्मेलन पहले कभी बुलाया न जा सका क्योंकि स्थानीय स्वायत शासन प्रान्तीय सरकारों के अधिकार सीमा में आता था ।[13]

अध्ययन के उद्देश्य

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के ब्रिटिशकालीन ऐतिहासिक स्वरूप को जानना ।
2. ब्रिटिशकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में किये गये कार्यों का अध्ययन करना ।
3. ब्रिटिश भारत में स्थानीय स्वशासन के स्वरूप एवं प्रभावशीलता का अध्ययन करना ।

अध्ययन पद्धति

1. ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति
2. अर्न्तविषयक अध्ययन पद्धति

शोध का निष्कर्ष

ब्रिटिशकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन की शुरूआत करने का श्रेय लार्ड रिपन को जाता है । लार्ड रिपन जब गवर्नर बने तो उन्होंने लोकमत को संतुष्ट करने के उद्देश्य से 1882 में स्थानीय शासन को स्वशासी बनाने का प्रस्ताव किया । इसके बाद निरन्तर सुधार एवं नवाचार किये गये परन्तु राजनीतिक दखल एवं दलगत भावना के कारण स्थानीय स्वशासन कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर पाया । वित्तीय अधिकारों की कमी की वजह से स्थानीय संस्थायें अपने प्रशासनीय दायित्वों को पूरा नहीं कर पा रही थी निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिशकाल में स्थानीय स्वशासन की नींव तो रखी गयी परन्तु उसे सशक्त नहीं बनाया गया । यह कमी स्वतंत्र भारत में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन द्वारा पूरी की गयी । ये संशोधन स्थानीय संस्थाओं को जीवन प्रदान करते हैं तथा स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माहेश्वरी एस.आर, ''भारत में स्थानीय शासन'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, एकादशम् संशोधित संस्करण : 2006, पृ. सं. 17
2. शर्मा अशोक कुमार, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'' दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2005, पृ. सं. 16
3. Government of India : Memorandum of the Development and working of Representative Institutions in the sphere of local self government, Vol. V.P. 1056, Report of the Indian Statutory Commission, 3568, Vol. 1, London, H.M.S.J. 1930 Page 298 पर उद्धृत ।
4. शर्मा अशोक कुमार, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'' दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2005, पृ. सं. 17.
5. माहेश्वरी एस.आर, ''भारत में स्थानीय शासन'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, एकादशम् संशोधित संस्करण : 2006, पृ. सं. 17–18.
6. सन् 1814 के रेगुलेशन एक्ट द्वारा
7. श्रीराम माहेश्वरी ''लोकल गवर्नमैंट इन इंडिया'', ओरियन्ट लोंगमैन, दिल्ली, 1976, पृ. सं. 16.
8. Report of the Taxation Enquiry Commission, 1953-54, Vol. III, Manager of Publications, Delhi, 1955, P. 336.
9. शर्मा अशोक कुमार, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'' दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2005, पृ. सं. 18,19
10. Report Royal Commission upon Decentralisation.
11 माहेश्वरी एस.आर, ''भारत में स्थानीय शासन'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, एकादशम् संशोधित संस्करण : 2006, पृ. सं. 23, 24
12 शर्मा अशोक कुमार, ''भारत में स्थानीय प्रशासन'' दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2005, पृ. सं. 22, 23
13. श्रीराम माहेश्वरी ''लोकल गवर्नमैंट इन इंडिया'', ओरियन्ट लोंगमैन, दिल्ली, 1976, पृ. सं. 16.